13. नशा

• प्रेमचंद

लेखक परिचय

हिंदी कथा साहित्य में मुंशी प्रेमचंद का नाम सर्वाधिक आदर के साथ लिया जाता है। इनका जन्म सन् 1880 में वाराणसी जिले के लमही नामक ग्राम में हुआ था। बी.ए. परीक्षा उत्तीर्ण करने के साथ ही आपको शिक्षा विभाग में सब डिप्टी इंसपेक्टर के पद पर नियुक्त कर दिया गया। किंतु अपने स्वतंत्र विचारों और स्वाभिमानी व्यक्तित्व के कारण इन्हें शीघ्र ही सरकारी सेवा से त्यागपत्र देना पड़ा। इसके बाद वे स्वतंत्र रहकर साहित्य–सृजन करते रहे।

प्रेमचंद ने पहले उर्दू में लिखना प्रारंभ किया। हिंदी में पहली कहानी 'पंच परमेश्वर' छपी। आपने 'मर्यादा', 'माधुरी', 'हंस', 'जागरण' आदि कई प्रसिद्ध हिंदी पत्रिकाओं का सम्पादन किया। कुछ दिनों तक आपने सिनेमा–जगत् में काम किया किंतु वहाँ का माहौल अनुकूल न होने के कारण आप को वहाँ से चला आना पड़ा।

मुंशी प्रेमचंद शोषित एवं पीड़ित समाज के प्रतिनिधि लेखक थे। आप की सहानुभूति दलित वर्ग–शोषित किसान–मजदूर एवं उपेक्षित नारी समाज के प्रति रही है। भारतीय कृषक–जीवन की पीड़ित अवस्था का जैसा हृदयस्पर्शी तथा रोमांचित कर देने वाला चित्रण आपने किया है वैसा अन्य लेखकों द्वारा संभव नहीं हुआ। आपकी रचनाओं में ठेठ भारत के दर्शन होते हैं।

प्रेमचंद के साहित्य पर गाँधीवाद का पर्याप्त प्रभाव है। तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक विचारधारा में प्रायः प्रगतिशील विचारों के पक्षधर हैं। आपके विचार में साहित्य को समाज का दर्पण ही नहीं, मशाल भी होना चाहिए।

मुंशी जी की भाषा सहज, स्वाभाविक और सुबोध है। उर्दू से हिंदी में आने के कारण प्रेमचंद की भाषा में तत्सम शब्दों की बहुलता मिलती है। लोकोक्तियों, मुहावरों एवं सूक्तियों के प्रयोग में आप सिद्ध हस्त हैं।

प्रेमचंद जी ने लगभग तीन सौ कहानियाँ तथा एक दर्जन उपन्यास लिखे हैं। हिंदी कथा साहित्य को आपने एक नवीन मोड़ दिया। अभी तक जिन कहानियों और उपन्यासों में तिलिस्म और जासूसी की प्रधानता थी प्रेमचंद ने उन कहानियों–उपन्यासों को सामाजिक समस्याओं का प्रस्थान बिंदु बनाया।

आपने अपने साहित्य के माध्यम से जीवन का सच्चा एवं यथार्थ चित्र उपस्थित कर के पीड़ित एवं शोषित जनता में जागरण का संदेश पहुँचाया, वह हमेशा महत्त्वपूर्ण रहेगा।

पाठ परिचय

प्रस्तुत कहानी में प्रेमचंद जी ने कथनी और करनी की विसंगति पर जबरदस्त व्यंग्य किया है। प्रायः ही हम उपदेश देने में चतुर होते हैं, परिवर्तन और क्रांति की बातें करते हैं, सामंती विलासिता को धिक्कारते हैं लेकिन अवसर आने पर हमारा मन उपदेश के अनुकूल आचरण नहीं करता। हमारा मन दूसरों का शोषण करते समय ग्लानि का अनुभव नहीं करता। तर्क, बुद्धि और

समझ हमारा साथ छोड़ देती है और हम उसी वृत्ति का अनुसरण करते हैं, जिसकी हम प्रायः निंदा करते होते हैं।

प्रस्तुत कहानी का मुख्य पात्र जमींदार के पुत्र ईश्वरी के उच्च रहन–सहन उनके गरीबों के प्रति निर्दयतापूर्ण आचरण एवं सामंतशाही की तीव्र निंदा करता है लेकिन ज्यों ही उसे ईश्वरी के साथ गाँव जाने का अवसर मिलता है वह अपने व्यवहार में ईश्वरी से भी अधिक निरंकुश और निर्दयी हो जाता है। वह गरीबों का पक्षधर व्यक्ति थोड़े ही दिनों में सामन्ती मौज–शौक और वातावरण से प्रभावित हो जाता है कि लौटते समय रेल में सामान्य मानवीय गुणों को ठुकरा कर दीन–हीन मुसाफिर के साथ हृदय–शून्य एवं निर्मम व्यवहार करता है। उसका 'नशा' तब उतरता है जब अन्य मुसाफिरों के साथ उसका मित्र स्वयं ईश्वरी उसके अभद्र व्यवहार से रुष्ट होकर उसे फटकारता है।

मूल पाठ

ईश्वरी एक बड़े जमींदार का लड़का था और मैं एक गरीब क्लर्क का जिसके पास मेहनत–मजदूरी के सिवा और कोई जायदाद न थी। हम दोनों में परस्पर बहसें होती रहती थीं मैं जमींदारों की बुराई करता, उन्हें हिंसक पशु और खून चूसनेवाली जोंक और वृक्षों की चोटी पर फूलने वाला बंझा कहता। वह जमींदारों का पक्ष लेता; पर स्वभावतः उसका पहलू कुछ कमजोर होता था; क्योंकि उसके पास जमींदारों के अनुकूल कोई दलील न थी। यह कहना कि सभी मनुष्य बराबर नहीं होते, छोटे–बड़े हमेशा होते रहते हैं और होते रहेंगे, लचर दलीलें थीं। किसी मानुषीय या नैतिक नियम से इस व्यवसाय का औचित्य सिद्ध करना कठिन था। मैं इस वाद–विवाद की गर्मा–गर्मी में अक्सर तेज हो जाता और लगने वाली बात कह जाता; लेकिन ईश्वरी हार कर भी मुस्कराता रहता था। मैंने उसे कभी गर्म होते नहीं देखा। शायद इसका कारण यह था कि वह अपने पक्ष की कमजोरी समझता था। नौकरों से वह सीधे मुँह बात न करता था। अमीरों में जो एक बेदर्दी और उद्दण्डता होती है, इसमें उसे भी प्रचुर भाग मिला था। नौकरों ने बिस्तर लगाने में जरा भी देर की, दूध जरूरत से ज्यादा गर्म या ठंडा हुआ, साइकिल अच्छी तरह साफ नहीं हुई, तो वह आपे से बाहर हो जाता। सुस्ती या बदतमीजी उसे जरा भी बर्दाश्त नहीं थी; पर दोस्तों से और विशेषकर मुझसे उसका व्यवहार सौहार्द और नम्रता से भरा होता था। शायद उसकी जगह मैं होता तो मुझमें भी वही कठोरताएँ पैदा हो जातीं, जो उसमें थीं, क्योंकि मेरा लोकप्रेम सिद्धांत पर नहीं, निजी दशाओं पर टिका हुआ था। वह मेरी जगह होकर भी शायद अमीर ही रहता, क्योंकि वह प्रकृति से विलासी और ऐश्वर्य–प्रिय था।

अब की दशहरे की छुट्टियों में मैंने निश्चय किया कि घर न जाऊँगा। मेरे पास किराये के लिए रुपये न थे और मैं घर वालों को तकलीफ नहीं देना चाहता था। जानता हूँ, वे मुझे जो कुछ देते हैं वह उनकी हैसियत से बहुत ज्यादा है। इसके साथ ही परीक्षा का ख्याल भी था। अभी बहुत कुछ पढ़ना बाकी था और घर जाकर कौन पढ़ता है बोर्डिंग–हाउस में भूत की तरह अकेले पड़े रहने को भी जी न चाहता था। इसलिए जब ईश्वरी ने मुझे अपने घर चलने का न्योता दिया तो मैं बिना आग्रह के राजी हो गया। ईश्वरी के साथ परीक्षा की तैयारी खूब हो जाएगी। वह अमीर होकर भी मेहनती और जहीन है।

उसने इसके साथ ही कहा – लेकिन भाई एक बात का ख्याल रखना वहाँ अगर जमींदारी की निंदा की तो मामला बिगड़ जायेगा और मेरे घर वालों को बुरा लगेगा। वह लोग तो असामियों पर इसी दावे से शासन करते हैं कि ईश्वर ने असामियों को उनकी सेवा के लिए ही पैदा किया है। असामी भी वही समझता है। अगर उसे सुझा दिया जाय कि जमींदार और असामी में कोई मौलिक भेद नहीं है, तो जमींदारों का कहीं पता न लगे।

मैंने कहा – ''तो क्या तुम समझते हो कि मैं वहां जाकर कुछ और हो जाऊँगा ?''

''हाँ, मैं तो यही समझता हूँ।''

''तुम गलत समझते हो।''

ईश्वरी ने इसका कोई जवाब न दिया। कदाचित् उसने इस मुआमले को मेरे विवेक पर छोड़ दिया। और बहुत अच्छा किया। अगर वह अपनी बात पर अड़ता तो भी अपनी जिद पकड़ लेता है।

सैकण्ड क्लास तो क्या मैंने कभी इण्टर क्लास में भी सफर न किया था। अब सैकण्ड क्लास में सफर करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। गाड़ी तो नौ बजे रात को आती थी; पर यात्रा के हर्ष में हम शाम को ही स्टेशन जा पहुँचे। कुछ देर इधर–उधर सैर करने के बाद रिफ्रेशमेण्ट–रूम में जाकर हम लोगों ने भोजन किया। मेरी वेश–भूषा और रंग–ढंग से पारखी खानसामों को पहचानने में देरी न लगी कि मालिक कौन है और पिछलग्गू कौन; लेकिन न जाने क्यों मुझे उनकी गुस्ताखी बुरी लग रही थी। पैसे ईश्वरी की जेब से गये। शायद मेरे पिता को जो वेतन मिलता है, उससे ज्यादा इन खानसामों को इनाम–इकराम में मिल जाता हो। एक अठन्नी तो चलते समय ईश्वरी ने ही दी। फिर भी मैं उन सभी से उसी तत्परता और विनय की प्रतीक्षा करता था जिससे वे ईश्वरी की सेवा कर रहे थे। ईश्वरी के हुक्म पर तो सब दौड़ते हैं लेकिन मैं कोई चीज मांगता हूँ तो उतना उत्साह नहीं दिखाते। मुझे भोजन में कुछ स्वाद न मिला। वह भेद मेरे ध्यान को संपूर्ण रूप से अपनी ओर खींचे हुए था।

गाड़ी आयी, हम दोनों सवार हुए। खानसामे ने ईश्वरी को सलाम किया, मेरी ओर देखा भी नहीं।

ईश्वरी ने कहा–कितने तमीजदार हैं ये सब ? एक हमारे नौकर हैं कि कोई काम करने का ढंग नहीं।

मैंने खट्टे मन से कहा–इसी तरह अगर तुम अपने नौकरों को भी आठ आने रोज इनाम दिया करो तो इससे ज्यादा तमीजदार हो जायें।

''तो क्या तुम समझते हो, यह सब केवल इनाम के लालच में इतना अदब करते हैं।''

''जी नहीं, कदापि नहीं। तमीज और अदब तो इनके रक्त में मिल गया है।''

गाड़ी चली। डाक थी। प्रयाग से चली तो प्रतापगढ़ जा कर रुकी। एक आदमी ने हमारा कमरा खोला। मैं तुरन्त चिल्ला उठा–दूसरा दरजा है–सैकण्ड कलास है।

उस मुसाफिर ने डिब्बे के अंदर आकर मेरी ओर एक विचित्र उपेक्षा की दृष्टि से देखकर कहा–जी हाँ, सेवक भी इतना समझता है। और बीच वाली बर्थ पर बैठ गया। मुझे कितनी लज्जा आयी, कह नहीं सकता।

भोर होते–होते हम लोग मुरादाबाद पहुँचे। स्टेशन पर कई आदमी हमारा स्वागत करने के लिए खड़े थे। दो भद्र पुरुष थे। पांच बेगार। बेगारों ने हमारा लगेज उठाया। दोनों भद्र पुरुष पीछे–पीछे चले। एक मुसलमान था रियासत अली, दूसरा ब्राह्मण था, रामहरख। दोनों ने मेरी ओर अपरिचित नेत्रों से देखा, मानों कह रहे हैं, तुम कौवे होकर हंस के साथ कैसे।

रियासत अली ने ईश्वरी से पूछा–यह बाबू साहब क्या आपके साथ पढ़ते हैं ?

ईश्वरी ने जबाब दिया – हाँ, साथ पढ़ते भी हैं, और साथ रहते भी हैं, यों कहिए कि आप ही के बदौलत मैं इलाहाबाद में पड़ा हुआ हूँ, नहीं कब का लखनऊ चला आया होता। अब की मैं इन्हें घसीट लाया। इनके घर से कई तार आ चुके थे, मगर मैंने इन्कारी जवाब दिलवा दिये। आखिरी तार तो अर्जेण्ट था, उसकी फीस चार आने प्रति शब्द थी; पर यहाँ से उसका जवाब भी इन्कारी ही गया।

दोनों सज्जनों ने मेरी ओर चकित नेत्रों से देखा। आतंकित हो जाने की चेष्टा करते हुए जान पड़े।

रियासत अली ने अद्र्ध शंका के स्वर में कहा – लेकिन आप बड़े सादे लिबास में रहते हैं।

ईश्वरी ने शंका निवारण की – महात्मा गांधी के भक्त हैं साहब। खद्दर के सिवा और कुछ पहनते ही नहीं। पुराने सारे कपड़े जला डाले यों कहो कि राजा हैं। ढाई लाख सालाना की रियासत है, पर आपकी सूरत देखो तो मालूम होता है, अभी अनाथालय से पकड़ कर आये हैं।

रामहरख बोले – अमीरों का ऐसा स्वभाव बहुत कम देखने में आता है। कोई भाँप नहीं सकता।

रियासत अली ने समर्थन किया – आपने महाराज चांगली को देखा होता तो दाँतों ऊँगली दबाते। एक गाढ़े की मिर्जई और चमरोधा जूता पहने बाजार में घूमा करते थे। सुनते हैं एक बार बेगार में पकड़े गये थे, और उन्हीं ने दस लाख से कालेज खोल दिया।

मैं मन में कटा जा रहा था; पर न जाने क्या बात थी कि यह सफेद झूठ उस वक्त मुझे हास्यास्पद न जान पड़ा। उसके प्रत्येक वाक्य के साथ मन में उस कल्पित वैभव के समीपतर आता जाता था।

मैं शहसवार नहीं हूँ। हां, लड़कपन में कई बार लद्द घोड़ों पर सवार हुआ हूँ। यहाँ देखा तो कलॉरास घोड़े हमारे लिए तैयार खड़े थे। मेरी तो जान ही निकल गयी। सवार तो हुआ; पर बोटियाँ कांप रही थीं। मैंने चेहरे पर शिकन न पड़ने दिया। घोड़े को ईश्वरी के पीछे डाल दिया। खैरियत तो यह हुई कि ईश्वरी ने घोड़ों को तेज न किया वरना शायद मैं हाथ–पाँव तुड़वाकर लौटता। सम्भव है ईश्वरी ने समझ लिया हो कि यह कितने पानी में है।

ईश्वरी का घर क्या था, किला था। इमामबाड़े का–सा फाटक, द्वार पर पहरेदार टहलता हुआ, नौकरों का कोई हिसाब ही नहीं, एक हाथी बँधा हुआ। ईश्वरी ने अपने पिता, चाचा, ताऊ आदि सबसे मेरा परिचय कराया और उसी अतिशयोक्ति के साथ। ऐसी हवा बांधी कि कुछ न पूछिए। नौकर–चाकर ही नहीं, घर के लोग भी मेरा सम्मान करने लगे देहात के अमींदार, लाखों

का मुनाफा मगर पुलिस कान्स्टेबिल को भी अफसर समझने वाले। कई महाशय तो मुझे हुजूर–हुजूर करने लगे।

जब जरा एकांत हुआ, तो मैंने ईश्वरी से कहा–तुम बड़े शैतान हो या, मेरी मिट्टी क्यों पलीद कर रहे हो ?

ईश्वरी ने सुदृढ़ मुस्कान के साथ कहा – इन गधों के सामने यही चाल जरूरी थी, वरना सीधे मुँह बोलते भी नहीं।

जरा देर बाद एक नाई हमारे पांव दबाने आया। कुँवर लोग स्टेशन से आये हैं, थक गये होंगे। ईश्वरी ने मेरी ओर इशारा करके कहा – पहले कुँवर साहब के पांव दबा।

मैं चारपाई पर लेटा हुआ था। मेरे जीवन में ऐसा शायद ही कभी हुआ हो कि किसी ने मेरे पांव दबाये हों। मैं इसे अमीरों के चोंचले, रईसों का गधापन और बड़े आदमियों की मुटमरदी और जाने क्या–क्या कह कर ईश्वरी का परिहास किया करता, और आज मैं पोतड़ों का रईस बनने का स्वांग भर रहा था।

इतने में दस बज गये। पुरानी सभ्यता के लोग थे। नयी रोशनी अभी केवल पहाड़ की चोटी तक पहुँच पायी थी। अंदर से भोजन का बुलावा आया। हम स्नान करने चले। मैं हमेशा अपनी धोती खुद छांट लिया करता हूँ, मगर यहां मैंने ईश्वरी की ही भांति अपनी धोती भी छोड़ दी। अपने हाथों अपनी धोती छांटते शर्म आ रही थी। अंदर भोजन करने चले। होटल में जूते पहने मेज पर जा डटते थे। यहाँ पांव धोना आवश्यक था। कहार पानी लिये खड़ा था। ईश्वरी ने पांव बढ़ा दिये। कहार ने उसके पांव धोये। मैंने भी पांव बढ़ा दिये। कहार ने मेरे पांव भी धोये। मेरा वह विचार न जाने कहाँ चला गया था।

सोचा था, वहाँ देहात में एकाग्र होकर खूब पढ़ेंगे, पर यहाँ सारा दिन सैर–सपाटे में कट जाता था। कहीं नदी में बजरे पर सैर कर रहे हैं, कहीं मछलियों या चिड़ियों का शिकार खेल रहे हैं, कहीं पहलवानों की कुश्ती देख रहे हैं। कहीं शतरंज पर जमें हैं। ईश्वरी खूब अंडे मँगवाता और कमरे में स्टोव पर आमलेट बनते हैं। नौकरों का एक जत्था हमेशा घेरे रहता। अपने हाथ–पांव हिलाने की जरूरत नहीं। केवल जबान हिला देना काफी है। नहाने बैठे तो आदमी नहलाने को हाजिर, लेटे तो दो आदमी पंखा झलने को खड़े। मैं महात्मा गांधी का कुँवर चेला मशहूर था। भीतर से बाहर तक मेरी धाक थी नाश्ते में जरा भी देर होने पाये, कहीं कुँवर साहब नाराज न हो जायँ। बिछावन ठीक समय पर लग जाय, कुँवर साहब का सोने का समय आ गया। मैं ईश्वरी से भी ज्यादा नाजुक दिमाग बन गया था, या बनने पर मजबूर किया गया था। ईश्वरी अपने हाथ से बिस्तर बिछा ले, लेकिन कुँवर मेहमान अपने हाथों से कैसे अपना बिछावन बिछा सकते हैं ? उनकी महानता में बट्टा लग जाएगा।

एक दिन सचमुच यही बात हो गयी। ईश्वरी घर में था। शायद अपनी माता से कुछ बात चीत करने में देर हो गई। यहाँ दस बज गये मेरी आँखें नींद से झपक रही थीं; मगर बिस्तर कैसे लगाऊँ ? कुँवर जो ठहरा। कोई साढ़े ग्यारह बजे महरा आया। बड़ा मुँह लगा नौकर था। घर के धन्धों में मेरा बिस्तर लगाने की उसे सुध न रही। अब जो याद आयी तो भागा हुआ आया। मैंने ऐसी डांट बतायी कि उसने भी याद किया होगा।

ईश्वरी मेरी डांट सुनकर बाहर निकल आया और बोला.......तुमने बहुत अच्छा किया। यह सब हरामखोर इसी व्यवहार के योग्य हैं।

इसी तरह ईश्वरी एक दिन एक जगह दावत में गया हुआ था। शाम हो गयी; मगर लैम्प न जला। लैम्प मेज पर रक्खा हुआ था। दियासलाई भी वहीं थी, लेकिन ईश्वरी खुद कभी लैम्प न जलाता। फिर कुँवर साहब कैसे जलायें ? झुंझला रहा था। समाचार–पत्र आया रखा हुआ था। जी उधर लगा हुआ था पर लैम्प नदारद। दैवयोग से उसी वक्त मुंशी रियासत अली आ निकले मैं उन्हीं पर उबल पड़ा, ऐसी फटकार बतायी कि बेचारा उल्लू.......हो गया तुम लोगों को इतनी फिक्र भी नहीं है, लैम्प तो जलवा दो। मालूम नहीं ऐसे कामचोर आदमियों का यहाँ कैसे गुजर होता है। मेरे यहाँ घंटे भर निर्वाह न हो। रियासत अली ने काँपते हुए हाथों से लैम्प जला दिया।

वहाँ एक ठाकुर अक्सर आया करता था। कुछ मनचला आदमी था। महात्मा गांधी का परम भक्त। मुझे महात्मा जी का चेला समझ कर मेरा बड़ा लिहाज करता था; मुझे कुछ पूछते संकोच करता था। एक दिन मुझे अकेला देखकर आया और हाथ बांध कर बोला – सरकार तो गान्धी बाबा के चेले हैं न ? लोग कहते हैं कि यहाँ सुराज हो जाएगा तो जमींदार न रहेंगे।

मैंने शान जमायी – जमींदारों को रहने की जरूरत ही क्या है ? यह लोग गरीबों को खून चूसने के सिवा और क्या करते हैं ?

ठाकुर ने फिर पूछा – तो क्या सरकार, सब जमींदारों की जमीन छीन ली जायगी ?

मैंने कहा – बहुत से लोग तो खुशी से दे देंगे। जो लोग खुशी से न देंगे तो उनकी जमीन छीननी ही पड़ेगी। हम लोग तैयार बैठे हुए हैं। ज्यों ही स्वराज्य हुआ, अपने सारे इलाके असामियों के नाम हिबा कर देंगे।

मैं कुरसी पर पांव लटकाये बैठा था। ठाकुर मेरे पांव दबाने लगा। फिर बोला .... आजकल जमींदार लोग बड़ा जुल्म करते हैं सरकार! हमें भी हुजूर अपने इलाके में थोड़ी–सी जमीन दे दें, तो चल कर वहीं आपकी सेवा में रहें।

मैंने कहा – अभी तो मेरा कोई अख्तियार नहीं है भाई; लेकिन ज्यों ही अख्तियार मिला, मैं सबसे पहले तुम्हें बुलवाऊँगा। तुम्हें मोटर ड्राईवरी सिखा कर अपना ड्राईवर बना लूंगा।

सुना, उस दिन ठाकुर ने खूब भंग पी और अपनी स्त्री को खूब पीटा और गांव के महाजन से लड़ने पर तैयार हो गया।

छुट्टी इसी तरह समाप्त हुई और हम फिर प्रयाग चले। गांव के बहुत से लोग हम लोगों को पहुँचाने आये। ठाकुर तो हमारे साथ स्टेशन तक आया। मैंने भी अपना पार्ट खूब सफाई से खेला और अपनी कुबेरोचित विनय और देवत्व की मुहर हरेक हृदय पर लगा दी। जी तो चाहता था हरेक नौकर को अच्छा इनाम दूँ, लेकिन वह सामर्थ्य कहां थी ? वापसी टिकट था ही, केवल गाड़ी में बैठना था; गाड़ी आयी तो ठसाठस भरी हुई। दुर्गापूजा की छुट्टियाँ भोग कर सभी लोग लौट रहे थे। सैकण्ड क्लास में तिल रखने को जगह नहीं। इण्टर क्लास की हालत उससे भी बदतर। यही आखिरी गाड़ी थी। किसी तरह रुक न सकते थे। बड़ी मुश्किल से तीसरे दर्जे में जगह मिली। हमारे ऐश्वर्य ने वहां अपना रंग जमा लिया मगर मुझे उसमें बैठना बुरा लग रहा था। आये थे आराम से लेटे–लेटे जा रहे थे सिकुड़े हुए। पहलू बदलने की भी जगह नहीं थी।

कई आदमी पढ़े–लिखे भी थे। वे आपस में अँगरेजी राज्य की तारीफ करते जा रहे थे। एक महाशय बोले–ऐसा न्याय तो किसी राज्य में नहीं देखा। छोटे–बड़े सब बराबर। राजा भी किसी प्रकार अन्याय करें, तो अदालत उनकी भी गर्दन दबा देती है।

दूसरे सज्जन ने समर्थन किया – अरे साहब, आप बादशाह पर दावा कर सकते हैं। अदालत में बादशाह पर डिग्री हो जाती है।

एक आदमी, जिसकी पीठ पर बड़ा–सा गट्ठर बँधा था, कलकत्ते जा रहा था। कहीं गठरी रखने को जगह न मिलती थी। पीठ पर बाँधे हुए था। इससे बेचैन होकर बार–बार द्वार पर खड़ा हो जाता। मैं द्वार के पास ही बैठा हुआ था। उसका बार–बार आकर मेरे मुँह को अपनी गठरी से रगड़ना मुझे बहुत बुरा लग रहा था। एक तो हवा यों ही कम थी, दूसरे उस गँवार का आकर मेरे मुँह पर खड़ा हो जाना मानो मेरा गला दबाना था। मैं कुछ देर तक जब्त किये बैठा रहा। एकाएक मुझे क्रोध आ गया। मैंने उसे पकड़ कर पीछे धकेल दिया और दो तमाचे जोर–जोर से लगाये।

उसने आंख निकाल कर कहा–क्यों मारते हो बाबू जी ? हमने भी किराया दिया है। मैंने उठ कर दो–तीन तमाचे और जड़ दिये।

गाड़ी में तूफान आ गया। चारों ओर से मुझ पर बौछार पड़ने लगी।

''अगर इतने नाजुक–मिजाज हो तो अव्वल दर्जे में क्यों नहीं बैठे।''

''कोई बड़ा आदमी होगा तो अपने घर का होगा। मुझे इस तरह मारते, तो दिखा देता।''

''क्या कसूर किया था बेचारे ने ? गाड़ी में सांस लेने की जगह नहीं खिड़की पर जरा सांस लेने खड़ा हो गया तो उस पर इत्ता क्रोध। अमीर होकर क्या आदमी इंसानियत बिलकुल खो देता है!''

''यह अँगरेजी राज है जिसका आप बखान कर रहे थे।''

एक ग्रामीण बोला – दफ्तर मां घुस पावत नाहीं, ओपे इत्ता मिजाज ?

ईश्वरी ने अँगरेजी में कहा – What an idiot you are, Bir!

और मेरा नशा अब कुछ–कुछ उतरता हुआ मालूम होता था।

•••

शब्दार्थ

जहीन–समझदार, बुद्धिमान / असामी–जमींदार से लगान पर खेत जातने के लिए लेने वाला व्यक्ति / इंसानियत–मानवीयता /

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. ''एक आदमी ने हमारा कमरा खोला। मैं तुरंत चिल्ला उठा दूसरा दर्जा है सैकण्ड क्लास है।'' ईश्वरी के मित्र के पीछे चिल्लाने का भाव था ?

(क) अहंकार (ख) क्रोध

(ग) हीनता (घ) काईयापन ( )

2. 'नशा' कहानी में किस विसंगति पर व्यंग्य किया गया ?

(क) उपदेशात्मकता (ख) कथनी और करनी में अंतर

(ग) शोषण चक्र (घ) जमींदारी प्रथा ( )

उत्तरमाला– (1) क (2) ख

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. 'नशा' कहानी के कहानीकार कौन हैं ?
2. ईश्वरी के मित्र के पिता क्या काम करते थे ?
3. ईश्वरी के मित्र के लिए लैम्प किसने जलाया ?
4. प्रेमचंद का जन्म कहाँ हुआ ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. अब की दशहरे की छुट्टियों में ईश्वरी का मित्र घर क्यों नहीं जाना चाहता था ?
2. ईश्वरी ने अपने नौकरों के सामने मित्र का बढ़ा–चढ़ा कर परिचय क्यों दिया ?
3. ईश्वरी का मित्र उसकी आलोचना क्यों करता था ?
4. प्रेमचंद की इस कहानी का मूल आशय स्पष्ट कीजिए।

निबंधात्मक प्रश्न

1. ईश्वरी और उसके मित्र की चारित्रिक विशेषताओं को बताइए।
2. गाँव जाते ही ईश्वरी के मित्र के स्वभाव में आए परिवर्तन का वर्णन कीजिए।

•••

यह भी जानें

विसर्ग (1)

(क) संस्कृत के जिन शब्दों में विसर्ग का प्रयोग होता है, वे शब्द यदि तत्सम रूप में प्रयुक्त हों तो विसर्ग का प्रयोग अवश्य किया जाए। जैसे – 'दुःखानुभूति' में। यदि उस शब्द के तद्भव रूप में विसर्ग का लोप हो चुका हो तो उस रूप में विसर्ग के बिना भी काम चल जाएगा। जैसे – 'दुख–सुख के साथी'।

(ख) तत्सम शब्दों के अंत में प्रयुक्त विसर्ग का प्रयोग अनिवार्य है। जैसे – अतः, पुनः, स्वतः, प्रायः, पूर्णतः, मूलतः, अंततः, वस्तुतः, क्रमशः आदि।

(ग) 'ह' का अघोष उच्चरित रूप विसर्ग है, अतः उसके स्थान पर (स) घोष 'ह' का लेखन किसी भी हालत में न किया जाए। (अतः, पुनः, आदि के स्थान पर अतह, पुनह आदि लिखना अशुद्ध वर्तनी का उदाहरण माना जाएगा)।

(घ) दुःसाहस/दुस्साहस, निःशब्द/निश्शब्द के उभय रूप मान्य होंगे। इनमें द्वित्व वाले रूप को प्राथमिकता दी जाए।

•••